भारतीय साहित्य को जैन साहित्य की विशिष्ट देन

श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

जैनधर्म भारत का प्राचीनतम धर्म है। उसके प्रवर्तक और प्रचारक २४ तीर्थंकर इसी भारत भूमि में ही जनमे; साधना करके विशिष्ट ज्ञान प्राप्त किया और जनता को धर्मोपदेश देकर भारत में ही निर्वाण को प्राप्त हुए। जैन परम्परा के अनुसार भगवान ऋषभदेव प्रथम तीर्थंकर थे। उन्होंने ही युगलिक धर्म (पुत्र एवं पुत्री युगल का साथ ही जन्म एवं बड़े होने पर उनमें पति-पत्नी सम्बन्ध) का निवारण करके असि (शास्त्र), मषि (लेखनी) कृषि तथा विद्याओं और कलाओं की शिक्षा देकर भारतीय संस्कृति को एक नया रूप दिया। वे महान् आविष्कर्ता थे। उन्होंने अपनी बड़ी पुत्री ब्राह्मी को जो लिपि सिखाई वह भारत की प्राचीनतम लिपि ब्राह्मी के नाम से प्रसिद्ध हुई और छोटी पुत्री सुन्दरी को अंक आदि सिखाये जिससे गणित का विकास हुआ। पुरुषों को ७२ तथा स्त्रियों की ६४ कलाएँ या विद्याएँ भगवान ऋषभदेव की ही विशिष्ट देन हैं। भगवान ऋषभदेव के बड़े पुत्र भरत ६ खण्डों को विजय कर चक्रवर्ती सम्राट् बने और उन्हीं के नाम से इस देश का नाम 'भारत' प्रसिद्ध हुआ।

व्यावहारिक शिक्षा देने के बाद भगवान ऋषभदेव ने पिछली आयु में संन्यास ग्रहण किया और तपस्या तथा ध्यान आदि की साधना से आत्मिक ज्ञान प्राप्त किया। उस परिपूर्ण और विशिष्ट ज्ञान का नाम "केवलज्ञान" जैन-धर्म में प्रसिद्ध है। इसके बाद उन्होंने आध्यात्मिक साधना का मार्ग प्रवर्तित किया; आत्मिक उन्नति और मोक्ष का मार्ग सबको बतलाया। इसलिए भगवान ऋषभदेव का जैन साहित्य में सर्वाधिक महत्त्व है। यद्यपि उनको हुए असंख्यात वर्ष हो गये, इसलिए उनकी वाणी या उपदेश तो हमें प्राप्त नहीं है, पर उनकी परम्परा में २३ तीर्थंकर और हुए, उन्होंने भी साधना द्वारा केवलज्ञान प्राप्त किया। सभी केवलियों का ज्ञान एक जैसा ही होता है। इसलिए ऋषदेव की ज्ञान की परम्परा अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर की वाणी और उपदेश के रूप में आज भी हमें प्राप्त है। समस्त जैन साहित्य का मूल आधार वही केवलज्ञानी तीर्थंकरों की वाणी ही है।

प्राचीनतम जैन साहित्य

भगवान महावीर के पहले के तीर्थंकरों के मुनियों का जो विवरण आगमों में प्राप्त है, उससे मालूम होता है कि पूर्वों का ज्ञान उस परम्परा में चालू था। आगे चलकर उनको १४ पूर्वों में विभाजित कर दिया। भगवान महावीर के समय और उसके कई शताब्दियों तक १४ पूर्वों का ज्ञान प्रचलित रहा, उसके पश्चात् क्रमशः उसमें क्षीणता आती गई, और करीब-करीब हजार वर्षों से १४ पूर्वों के ज्ञान की वह विशिष्ट परम्परा लुप्त-सी हो गई।

भगवान महावीर ने जो ३० वर्ष तक अनेक स्थानों में विचरते हुए धर्मोपदेश दिया उसे उनके प्रधान शिष्य गौतम आदि ११ गणधरों ने सूत्ररूप में निबद्ध कर दिया। वह उपदेश १२ अंगसूत्रों में विभक्त कर दिया गया जिसे "द्वादशांग-गणि-पिटक" कहा जाता है। इनमें से १२वाँ दृष्टिवाद अंग सूत्र जो बहुत बड़ा और विशिष्ट ज्ञान का स्रोत था, पर वह तो लुप्त हो चुका है। बाकी ११ अंग सूत्र करीब हजार वर्ष तक मौखिक रूप से प्रचलित रहे इसलिए उनका भी बहुत-सा अंश विस्मृत हो गया। वीरनिर्वाण संवत् ९८० में देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने सौराष्ट्र की वल्लभी नगरी में उस समय तक जो आगम मौखिक रूप से प्राप्त थे, उनको लिपिबद्ध कर दिया। अतः प्राचीनतम जैन साहित्य के रूप में वे ११ अंग और उनके उपांग तथा उनके आधार से बने हुए जो भी आगम आज प्राप्त हैं, उन्हें प्राचीनतम जैन साहित्य माना जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर सम्प्रदाय में तो ये अंग सूत्रादि लुप्त हो गये ऐसा माना जाता है, पर श्वेताम्बर सम्प्रदाय में वे ही आगम-ग्रन्थ प्राप्त और मान्य हैं।

जैन साहित्य का विकास

भगवान महावीर के बाद कई जैनाचार्यों ने बहुत से सूत्रग्रन्थ बनाये, पर उन सूत्रों में से २-४ को छोड़कर बाकी में रचयिता का नाम नहीं मिलता। उन रचयिता के नामवाले ग्रन्थों में सबसे पहला सूत्र है "दशवैकालिक" जिसमें जैन मुनियों का आचार संक्षेप में वर्णित है। इस सूत्र के रचयिता शय्यंभवसूरी महावीर निर्वाण के ९८वें वर्ष में स्वर्गस्थ पूर्व पट्टधर हुए हैं। इसके बाद आचार्य भद्रबाहु श्रुतकेवली ने बृहद्कल्प, व्यवहार और दशाश्रुतस्कन्ध नामक ३ छेदसूत्रों की रचना की। १० आगमों की निर्युक्तियाँरूप प्राचीन आगमिक टीकाएँ भी भद्रबाहु रचित हैं। पर आधुनिक विद्वानों की राय में इनके कर्ता द्वितीय भद्रबाहु पीछे हुए हैं। इसके बाद श्यामाचार्य ने पन्नवणासूत्र बनाया। इस तरह समय-समय पर अन्य कई आचार्यों और विद्वानों ने ग्रन्थ बनाकर जैन साहित्य की अभिवृद्धि की।

संस्कृत में जैन साहित्य

भगवान महावीर ने तत्कालीन लोकभाषा अर्द्धमागधी में उपदेश दिया था और उसी परम्परा को जैनाचार्यों ने भी ५०० वर्षों तक बराबर निभाया। अतः उस समय तक का समस्त जैन साहित्य प्राकृत भाषा में ही रचित है। इसके बाद संस्कृत के बढ़ते हुए प्रचार से जैन विद्वान् भी प्रभावित हुए और उन्होंने प्राकृत के साथ-साथ संस्कृत में भी रचना करना प्रारम्भ कर दिया। उपलब्ध जैन साहित्य में सबसे पहला संस्कृत ग्रन्थ आचार्य उमास्वाति रचित "तत्त्वार्थसूत्र" माना जाता है, जो विक्रम की दूसरी-तीसरी शताब्दी की रचना है। इसमें छोटे-छोटे सूत्रों के रूप में जैन सिद्धान्तों का बहुत खूबी से संकलन कर दिया गया है। यह १० अध्यायों में विभक्त है। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदाय इसे समान रूप से मान्य करते हैं; और दोनों सम्प्रदाय वालों की इस पर टीकाएँ प्राप्त हैं। श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार तो तत्त्वार्थसूत्र का भाष्य स्वयं उमास्वाति ने ही रचा है। सूत्रग्रन्थों की परम्परा का यह महत्त्वपूर्ण संस्कृत जैन ग्रन्थ है।

इसके बाद तो समन्तभद्र, सिद्धसेन, पूज्यपाद, अकलंक, हरिभद्र आदि श्वेताम्बर व दिगम्बर दोनों संप्रदायों के विद्वानों द्वारा दार्शनिक न्यायग्रन्थ और टीकाएँ आदि संस्कृत में बराबर रची जाती रहीं। और आगे चलकर काव्य, चरित्र और सभी विषयों के जैन ग्रन्थ संस्कृत में खूब लिखे गये।

अपभ्रंश एवं लोक-भाषाओं में जैन साहित्य—

जनभाषा में निरन्तर परिवर्तन होता ही रहता है, अतः प्राकृत भाषा अपभ्रंश के रूप में परिणत हो गई। अपभ्रंश में भी जैनों ने ही सर्वाधिक साहित्य का निर्माण किया है। वैसे तो प्राचीन संस्कृत नाटकों में भी निम्न जाति के एवं साधारण पुरुषों और स्त्रियों की भाषा अपभ्रंश व्यवहरित हुई है पर स्वतन्त्र अपभ्रंश भाषा की रचनाएँ ८वीं-९वीं शताब्दी से मिलने लगी हैं और १७वीं शताब्दी तक छोटी-बड़ी सैकड़ों रचनाएँ जैन कवियों की रचित आज भी प्राप्त हैं। कवि स्वयंभू, पुष्पदंत, धनपाल आदि अपभ्रंश के जैन महाकवि हैं। जैनेतर रचित अपभ्रंश साहित्य विशेष नहीं मिलता। क्योंकि उन्होंने प्रारम्भ से ही संस्कृत को प्रधानता दे रखी थी, अतः उनका सर्वाधिक साहित्य संस्कृत में है।

अपभ्रंश से उत्तर भारत की प्रान्तीय भाषाओं का निकास और विकास हुआ। १३वीं शताब्दी से राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी में साहित्य मिलने लगता है। यद्यपि १५वीं शताब्दी तक अपभ्रंश का प्रभाव उन रचनाओं में पाया जाता है। उस समय तक राजस्थान और गुजरात में तो एक ही भाषा बोली जाती थी जिसे राजस्थान वाले पुरानी राजस्थानी एवं गुजरात वाले जूनी गुजराती कहते हैं। अतः कई विद्वानों ने उसे 'मरु-गुर्जर' भाषा कहना अधिक उचित माना है। आगे चलकर राजस्थानी, गुजराती और हिन्दी में प्रान्तीय-भेद अधिक स्पष्ट होते गये। इन तीनों भाषाओं में भी जैन विद्वानों ने प्रचुर रचनाएँ बनायी हैं। वैसे कुछ रचनाएँ सिन्धी, मराठी, बंगला आदि अन्य प्रान्तीय भाषाओं में भी जैनों की रचित प्राप्त है। हिन्दी, राजस्थानी और गुजराती में तो लाखों श्लोक परिमित गद्य और पद्य की जैन रचनाएँ प्राप्त हैं, एवं प्राचीनतम रचनाएँ जैनों की ही प्राप्त हैं।

कथाओं का भण्डार-जैन साहित्य

लोकभाषा की तरह लोक-कथाओं और देशी संगीत को भी जैनों ने विशेषरूप से अपनाया। इसलिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोककथाओं का भी बहुत बड़ा भण्डार जैन साहित्य में पाया जाता है। लोकगीतों की चाल या तर्ज पर हजारों स्तवन, सज्झाय, ढाल आदि छोटे-बड़े काव्य रचे गये हैं। उन ढाल आदि के प्रारम्भ में किस लोकगीत की तर्ज पर इस गेय रचना को गाना चाहिए, इसका उल्लेख करते हुए उस लोकगीत की कुछ प्रारम्भिक पंक्तियाँ भी उद्धरित कर दी गई हैं, जिससे हजारों विस्मृत और लुप्त लोकगीतों की जानकारी मिलने के साथ-साथ कौनसा गीत कितना पुराना है इसके निर्णय करने में भी सुविधाएँ हो गयी हैं। इस सम्बन्ध में मेरे कई लेख भी प्रकाशित हो चुके हैं।

एक-एक लोक-कथा को लेकर अनेकों जैन रचनाएँ प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी आदि भाषाओं में जैन विद्वानों ने लिखी हैं। इससे वे लोक-कथाएँ कौनसी कितनी पुरानी हैं, उनका मूल रूप क्या था ? और कब-कब कैसा और कितना परिवर्तन उनमें होता रहा, इन सब बातों की जानकारी जैन कथा साहित्य से ही अधिक मिल सकती है। उन लोक-कथाओं को धर्म-प्रचार का माध्यम बनाने के लिए उनमें जैन-सिद्धान्तों और आचार-विचारों का पुट दे दिया गया है, जिससे जनता उन कथाओं को सुनकर पापों से बचे और अच्छे कार्यों की प्रेरणा प्राप्त करें। क्योंकि कथाएँ बालक, युवा वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी को समान रूप से प्रभावित कर सकती हैं, इसलिए जैन लेखकों ने कथा सम्बन्धी साहित्य बहुत बड़े परिमाण में रचा है। और इससे जन-साधारण के जीवन में सदाचार और नैतिकता का खूब प्रचार हुआ।

विशेषताएं

जैन साहित्य की एक सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें विकारवर्द्धक और वासनाओं को उभारने वाले साहित्य को स्थान नहीं मिला। इससे लोक-जीवन का नैतिक स्तर ऊँचा उठा, और भारत का गौरव बढ़ा।

साहित्य संरक्षण में जैनों का विशेष योगदान

जैन साहित्य की एक दूसरी विशेषता यह है कि वह निरन्तर लिखा जाता रहा और उसकी सुरक्षा का भी बहुत अच्छा प्रयत्न किया जाता रहा। इसलिए हस्तलिखित प्रतियों के 'ज्ञान भण्डार' जैनों के पास बहुत बड़ी व अच्छी संख्या में सुरक्षित है। प्राचीन और शुद्ध प्रतियों की उपलब्धि उन ज्ञान भण्डारों की उल्लेखनीय विशेषता है।

जैसलमेर के ज्ञान भण्डार में एक ताड़पत्रीय प्रति १०वीं शताब्दी की है। वैसे १२वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक की ताड़पत्रीय प्रतियाँ जैसलमेर, पाटण, खंभात, बड़ौदा आदि में करीब एक हजार सुरक्षित हैं। १३वीं शताब्दी से कागज पर ग्रन्थ लिखे जाने लगे। तब से अब तक की लाखों प्रतियाँ कागज की, प्राप्त हैं। इनमें केवल जैन साहित्य ही नहीं, अपितु बहुत-सा जैनेतर साहित्य भी है जो अन्यत्र कहीं नहीं मिलता और यदि मिलता है तो भी उन जैनेतर ग्रन्थों की प्राचीन व शुद्ध प्रतियाँ जैन भण्डारों में जितनी व जैसी मिलती हैं, उतनी और वैसी जैनेतर संग्रहालयों में नहीं मिलतीं। अर्थात् साहित्य के निर्माण में ही नहीं, संरक्षण में भी जैनों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। सचित्र, स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी, पंचपाठ, त्रिपाठ आदि अनेक शैलियों की विशिष्ट प्रतियाँ बहुत ही उल्लेखनीय हैं। लेखनकला और चित्रकला का जैनों ने खूब विकास किया। इस सम्बन्ध में सौजन्य मूर्ति महान साहित्य सेवी स्वर्गीय पुण्यविजयजी लिखित 'भारतीय श्रमण संस्कृति अने लेखनकला' नामक गुजराती ग्रन्थ पठनीय है जो साराभाई नबाब, अहमदाबाद से प्रकाशित है।

भाषा-विज्ञान के अध्ययन में जैन साहित्य की उपयोगिता

भाषा-विज्ञान की दृष्टि से जैन साहित्य का महत्त्व सबसे अधिक है क्योंकि जैन मुनि निरन्तर घूमते रहते हैं और सब प्रान्तों में धर्म-प्रचारार्थ और तीर्थ-यात्रा आदि के लिए उनका यातायात होता रहा है। उनका जीवन बहुत संयमित होने से उन्होंने साहित्य निर्माण और लेखन में बहुत समय लगाया। इसी का परिणाम है कि अलग-अलग प्रान्तों की भाषाओं में जैन विद्वान बराबर लिखते रहे। इससे उन भाषाओं का विकास किस तरह होता गया, शब्दों के रूपों में किस तरह का परिवर्तन हुआ, इसकी जानकारी जैन रचनाओं से जितनी अधिक मिलती है, उतनी जैनेतर रचनाओं से नहीं मिलती। क्योंकि एक तो वे इतनी सुरक्षित नहीं रहीं और प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की जैन रचनाएँ जिस तरह की मिलती है, वैसी जैनेतरों की नहीं मिलतीं।

प्राकृत भाषा के दो प्रधान भेद हैं—शौरसेनी और महाराष्ट्री। शौरसेनी में दिगम्बर और महाराष्ट्री में श्वेताम्बर साहित्य रचा गया। इनसे अपभ्रंश और अपभ्रंश से उत्तर भारत की प्रान्तीय भाषाओं की शृंखला जुड़ती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर भारत की प्रान्तीय भाषाओं की तरह दक्षिण भारत की प्रमुख भाषा कन्नड़ और तमिल इन दोनों में भी जैन साहित्य बहुत अधिक मिलता है। आचार्य भद्रबाहु दक्षिण भारत में अपने संघ को लेकर पधारे क्योंकि उत्तर भारत में उन दिनों बहुत बड़ा दुष्काल पड़ा था। उनके दक्षिण भारत में पधारने से उनके ज्ञान और त्याग तप से प्रभावित होकर दक्षिण भारत के अनेक लोगों ने जैनधर्म को स्वीकार कर लिया और उनकी संख्या क्रमशः बढ़ती ही गई। आस-पास के क्षेत्रों में जैनधर्म का खूब प्रचार हुआ। जैन मुनि चातुर्मास के अतिरिक्त एक जगह रहते नहीं हैं, इसलिए उन्होंने घूम-फिर कर जैनधर्म का सन्देश जन-जन में फैलाया। लोक-सम्पर्क के लिए वहाँ जो कन्नड़ और तमिल भाषाएँ अलग-अलग प्रदेशों में बोली जाती थीं उनमें अत्यधिक साहित्य निर्माण किया। अतः उन दोनों भाषाओं का प्राचीन और महत्त्वपूर्ण साहित्य जैनों का ही प्राप्त है। इस तरह उत्तर और दक्षिण भारत की प्रधान भाषाओं में जैन साहित्य का प्रचुर परिमाण में पाया जाना बहुत ही उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण है। भारतीय साहित्य को जैनों की यह विशिष्ट देन ही समझनी चाहिये।

विषय वैविध्य

विषय वैविध्य की दृष्टि से भी जैन साहित्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। क्योंकि जीवनोपयोगी प्रायः प्रत्येक विषय के जैन ग्रन्थ रचे गये हैं इसलिए जैन साहित्य केवल जैनों के लिए ही उपयोगी नहीं उसकी सार्वजनिक उपयोगिता है। व्याकरण, कोश, छन्द, अलंकार, काव्य-शास्त्र, वैद्यक, ज्योतिष, मन्त्र-तन्त्र, गणित, रत्न-परीक्षा आदि अनेक विषयों के जैन ग्रन्थ प्राकृत, संस्कृत, कन्नड, तमिल और राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती में प्राप्त हैं। इनमें से कई ग्रन्थ तो इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि जैनेतरों ने भी उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की है और उन्हें अपनाया है। जैन विद्वानों ने साहित्यिक क्षेत्र में बहुत उदारता रखी। किसी भी विषय का कोई अच्छा ग्रन्थ कहीं भी उन्हें प्राप्त हो गया तो जैनविद्वानों ने उसकी प्रति मिल सकी तो ले ली या खरीद करवा ली, नहीं तो नकल करवाकर अपने भण्डार में रख ली। जैनेतर ग्रन्थों का पठन-पाठन भी वे बराबर करते ही थे। अतः आवश्यकता अनुभव करके उन्होंने बहुत से जैनेतर ग्रन्थों पर महत्त्वपूर्ण टीकाएँ लिखी हैं। इससे उन ग्रन्थों का अर्थ या भाव समझना सबके लिए सुलभ हो गया और उन ग्रन्थों के प्रचार में अभिवृद्धि हुई। जैनेतर ग्रन्थों पर जैन टीकाओं सम्बन्धी मेरा खोजपूर्ण लेख "भारतीय विद्या" के दो अंकों में प्रकाशित हो चुका है। जैन ग्रन्थों में बौद्ध और वैदिक अनेक ग्रन्थों के उद्धरण पाये जाते हैं। उनमें से कई जैनेतर ग्रन्थ तो अब उपलब्ध भी नहीं होते। बहुत से जैनेतर ग्रन्थों को अब तक बचाये रखने का श्रेय जैनों को प्राप्त है।

ऐतिहासिक दृष्टि से जैन साहित्य का महत्त्व—

ऐतिहासिक दृष्टि से जैन साहित्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। भारतीय इतिहास, संस्कृति और लोक-जीवन सम्बन्धी बहुत ही महत्त्वपूर्ण सामग्री जैन ग्रन्थों व प्रशस्तियों एवं लेखों आदि में पायी जाती है। जैन आगम साहित्य में दो-अढाई हजार वर्ष पहले का जो सांस्कृतिक विवरण मिलता है, उसके सम्बन्ध में डा० जगदीशचन्द्र जैन लिखित "जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज" नामक शोध-प्रबन्ध चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी से प्रकाशित हुआ है, उससे बहुत सी महत्त्वपूर्ण बातों का पता चलता है। जैन प्रबन्ध संग्रह, पट्टावलियाँ, तीर्थमालाएँ और ऐतिहासिक गीत, काव्य आदि में अनेक छोटे-बड़े ग्राम-नगरों, वहाँ के शासकों, प्रधान व्यक्तियों का उल्लेख मिलता है, जिनसे छोटे-छोटे गाँवों की प्राचीनता, उनके पुराने नाम और वहाँ की स्थिति का परिचय मिलता है। बहुत से शासकों के नाम जिनका इतिहास में कहीं भी नाम नहीं मिलते, उनका जैन ग्रन्थों में उल्लेख मिल जाता है। बहुत से राजाओं आदि के काल-निर्णय में भी जैन सामग्री काफी सूचनाएँ देती है व सहायक होती है। इस दृष्टि से गुर्वावली तो बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

जैन साहित्य की गुणवत्ता

अब यहाँ कुछ ऐसे जैन ग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय कराया जायगा, जो अपने ढंग के एक ही हैं। इनमें कई ग्रन्थ तो ऐसे भी हैं जो भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व साहित्य में भी अजोड़ हैं। प्राचीन भारत में ज्ञान-विज्ञान का कितना अधिक विकास हुआ था और आगे चलकर इसमें कितना ह्रास हो गया—इसकी कुछ झाँकी आगे दिये जाने वाले विवरणों से पाठकों को मिल जायगी। ऐसे कई ग्रन्थों का तो प्रकाशन भी हो चुका है, पर उनकी जानकारी विरले ही व्यक्तियों को होगी। वास्तव में जैन साहित्य अब तक बहुत ही उपेक्षित रहा है और बहुत से विद्वानों ने तो यह गलत धारणा बना ली है कि जैन साहित्य, जैनधर्म आदि के सम्बन्ध में ही होगा, सर्वजनोपयोगी साहित्य उसमें नहीं-वत् है। पर वास्तव में सर्वजनोपयोगी जैन साहित्य बहुत बड़े परिमाण में प्राप्त है, जिससे लाभ उठाने पर भारतीय समाज का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत बड़ा उपकार होगा। बहुत-सी नयी और महत्त्वपूर्ण जानकारी जैन साहित्य के अध्ययन से प्रकाश में आ सकेगी। संख्या की दृष्टि से ही नहीं, गुणवत्ता की दृष्टि से भी जैन साहित्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।

जैन साहित्य के विशिष्ट ग्रन्थ

प्राकृत भाषा का एक प्राचीन ग्रन्थ "अंगविज्जा" मुनि श्री पुण्यविजयजी संपादित प्राकृत ग्रन्थ परिषद् से प्रथम ग्रन्थाङ्क के रूप में सन् १९५७ में प्रकाशित हुआ है। ९ हजार श्लोक परिमित यह ग्रन्थ अपने विषय का सारे भारतीय समाज में एक ही ग्रन्थ है। इसमें इतनी विपुल और विविध सांस्कृतिक सामग्री सुरक्षित है कि उस समय के जैनाचार्यों का किन-किन विषयों का कैसा विशद ज्ञान था, यह जानकर आश्चर्य होता है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने हिन्दी में और डा० मोतीचन्द्र ने अँग्रेजी में इस ग्रन्थ का जो विवरण दिया है, उससे इसका महत्व स्पष्ट हो जाता है। निमित्त शास्त्र के ८ प्रकारों में पहली 'अंगविद्या' है। अग्रवालजी ने लिखा है कि "अंगविद्या क्या थी? इसको बताने वाला **एकमात्र प्राचीन ग्रन्थ यही जैन साहित्य में 'अंगविज्जा' के नाम से बच गया है**। यह अंगविज्जा नामक प्राचीन शास्त्र सांस्कृतिक दृष्टि से अति महत्वपूर्ण सामग्री से परिपूर्ण है। अंगविज्जा के आधार पर वर्तमान प्राकृत कोशों में अनेक नये शब्दों को जोड़ने की आवश्यकता है।"

मुनि पुण्यविजयजी ने जो ग्रन्थ के अन्त में शब्द कोश दिया है, उसमें हजारों नाम व शब्द आये हैं, जिनमें से बहुतों का सही अर्थ बतलाना भी आज कठिन हो गया है। मुनिश्री ने लिखा है कि "सामान्यतया प्राकृत वाङ्मय में जिन क्रियापदों का उल्लेख संग्रह नहीं हुआ है, उनका संग्रह इस ग्रन्थ में विपुलता से हुआ है जो प्राकृत समृद्धि की दृष्टि से बड़े महत्व का है। फलादेश विषयक यह ग्रन्थ एक पारिभाषिक ग्रन्थ है।"

डा० अग्रवालजी ने इसे कुषाण-गुप्त युग की सन्धि काल का बतलाया है। अर्थात् यह ग्रन्थ बहुत पुराना है। इस तरह के न मालूम कितने महत्वपूर्ण ग्रन्थ काल के गाल में समा गये हैं।

प्राकृत भाषा का दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ है संघदासगणि रचित "वसुदेव हिन्डी।" यह भी तीसरी और पाँचवीं शताब्दी के बीच की रचना है। इसमें मुख्यत: तो श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव के भ्रमण और कई विवाहों का वर्णन है, पर इसमें प्रासंगिक रूप में अनेक पौराणिक और लौकिक कथाओं का समावेश भी पाया जाता है। पाश्चात्य विद्वानों और डा० जगदीशचन्द्र जैन तथा डा० सांडेसरा आदि के अनुसार यह अप्राप्त बृहत्कथा नामक लुप्त ग्रन्थ की बहुत अंशों में पूर्ति करता है। सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से इसका बहुत ही महत्व है। इस सम्बन्ध में दो बड़े-बड़े शोध प्रबन्धात्मक ग्रन्थ लिखे जा चुके हैं। 'वसुदेव हिन्डी' का मध्यम खण्ड उत्तरकालीन है।

प्राकृत भाषा का तीसरा उल्लेखनीय ग्रन्थ है "ऋषिभाषित"। इसमें कई ऋषियों के वचनों का संग्रह है। ये ऋषि जैन, बौद्ध और वैदिक तीनों धर्मों के हैं। अपने ढंग का यह एक ही ग्रन्थ है। इसी तरह हरिभद्रसूरि का "धूर्ताख्यान" भी प्राकृत भाषा का अनूठा ग्रन्थ है। ये दोनों ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

भारतीय मुद्राशास्त्र सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है "द्रव्यपरीक्षा"। इसकी रचना अलाउद्दीन खिलजी के कोषाध्यक्ष या भण्डारी खरतरगच्छीय जैन श्रावक 'ठक्कुर फेरु' ने की है। उस समय की प्रचलित सभी मुद्राओं के तौल, माप, मूल्य आदि की जो जानकारी इस ग्रन्थ में दी गयी है, वैसी और किसी भी ग्रन्थ में नहीं मिलती। ठक्कुर फेरु ने इसी तरह धातोत्पत्ति, वास्तुसार, गणितसार, ज्योतिषसार, रत्नपरीक्षा आदि महत्वपूर्ण ग्रन्थ बनाये हैं। इन सबकी प्राचीन हस्तलिखित प्रति की खोज मैंने ही की और मुनि जिनविजयजी द्वारा सभी ग्रन्थों के एक संग्रह-ग्रन्थ में प्रकाशित करवा दिया है। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से यह प्राप्य है।

संस्कृत भाषा में एक विलक्षण ग्रन्थ है "पार्श्वाभ्युदय काव्य", जिसकी रचना आचार्य जिनसेन ने की है। इसमें मेघदूत के समग्र चरणों को पादपूर्ति रूप में भगवान पार्श्वनाथ का चरित्र दिया गया है। कालिदास के पद्यों के भावों को आत्मसात् करके ऐसा काव्य सबसे पहले समग्रपादपूर्ति के रूप में बनाकर ग्रन्थकार ने अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया है।

विश्व साहित्य में अजोड़ अन्य जैन संस्कृत ग्रन्थ है "अष्टलक्षी"। इसे सम्राट् अकबर के समय में महोपाध्याय समयसुन्दरजी ने संवत् १६४९ में प्रस्तुत किया था। इस आश्चर्यकारी प्रयत्न से सम्राट बहुत ही प्रसन्न हुआ। इस ग्रन्थ में **"राजा नो ददते सौख्यम्"** इन आठ अक्षरों वाले वाक्य के १० लाख से भी अधिक अर्थ किये हैं। रचयिता ने लिखा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि कई अर्थ संगति में ठीक नहीं बैठें तो भी दो लाख शब्दों को बाद देकर ८ लाख अर्थ तो इसमें व्याकरणसिद्ध हैं ही। इसीलिए इसका नाम "अष्टलक्षी" रखा है। यह ग्रन्थ देवचन्द्र लालभाई पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, से प्रकाशित 'अनेकार्थ रत्न मंजूषा' में प्रकाशित हो चुका है।

संस्कृत का तीसरा अपूर्व ग्रन्थ है—'सप्त-सन्धान' महाकाव्य। यह १८वीं शताब्दी के महान् विद्वान् उपाध्याय मेघविजय रचित है। इसमें ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर इन पाँच तीर्थंकरों और लोकप्रसिद्ध महापुरुष द्वय—राम और कृष्ण इन सातों महापुरुषों की जीवनी एक साथ में चलती है। यह रचना विलक्षण तो है ही। कठिन भी इतनी है कि बिना टीका के सातों महापुरुषों से सम्बन्धित प्रत्येक श्लोक की संगति बैठाना विद्वानों के लिए भी सम्भव नहीं होता। यह महाकाव्य टीका के साथ पत्राकार रूप में प्रकाशित हो चुका है। वैसे द्विसंधान, पंचसंधान आदि तो कई काव्य मिलते हैं, पर 'सप्तसंधान' ग्रन्थ विश्वभर में यह एक ही है। ग्रन्थकार ने ऐसा उल्लेख किया है, कि ऐसा काव्य पहले आचार्य हेमचन्द्र ने बनाया था, पर आज वह प्राप्त नहीं है।

दक्षिण के दिगम्बर जैन विद्वान् हंसदेव रचित 'मृगपक्षी शास्त्र' भी अपने ढंग का एक ही ग्रन्थ है। इसमें पशु-पक्षियों की जाति एवं स्वरूप का निरूपण है। इस ग्रन्थ का विशेष निरूपण मेरी प्रेरणा से श्री जयंत ठाकुर ने गुजराती में लिखकर "स्वाध्याय" पत्रिका में प्रकाशित कर दिया है। इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि बड़ौदा के प्राच्य विद्या मंदिर में है। पशु-पक्षियों सम्बन्धी ऐसी जानकारी अन्य किसी प्राचीन ग्रन्थ में नहीं मिलती।

कन्नड़ साहित्य का एक विलक्षण ग्रन्थ है "सिरि भूवलय"। यह अंकों में लिखा गया है। कहा जाता है कि इसमें अनेक ग्रन्थ संकलित हैं एवं अनेक भाषाएँ प्रयुक्त हैं। इसका एक भाग जैन मित्र मंडल, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद जी के समय तो इस ग्रन्थ के महत्व के सम्बन्ध में काफी चर्चा हुई है पर उसके बाद उसका पूरा रहस्य सामने नहीं आ सका।

हिन्दी भाषा में एक बहुत ही उल्लेखनीय रचना है "अर्द्धकथानक"। १७वीं शताब्दी के जैन कवि बनारसीदास जी ने अपने जीवन की आत्मकथा बहुत ही रोचक रूप में इस ग्रन्थ में दी है। इस आत्मकथा की प्रशंसा श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुक्त कंठ से की है।

इस तरह के और भी अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ जैन साहित्य-सागर में प्राप्त हैं जिससे भारतीय साहित्य अवश्य ही गौरवान्वित हुआ है। वास्तव में इस विषय पर तो एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही लिखा जाना अपेक्षित है। यहाँ तो केवल संक्षिप्त झांकी ही दी जा सकी है। ☆

पुष्कर वाणी

कहा जाता है कि बत्तख सदा पानी में रहता है किन्तु कभी पानी में डूबता नहीं। पानी का प्रवाह चाहे जितना तेज हो जाये वह स्वभावतः सदा उसके ऊपर-ऊपर ही तैरता रहता है।

जीवन में ऐसी निर्लिप्तता सीखनी है। धन-वैभव, सत्ता और विषयों के जल में रहने वाले मानव! कभी उनमें डूबो मत! धन, सत्ता और सुखों के साधन चाहें जितने बढ़ें, तुम बत्तख की भाँति सदा ऊपर तैरते ही रहो, डूबो मत!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org